

हमारे उत्तरदायित्व नैतिकता के परिप्रेक्ष्य

डॉ. प्रतिभा पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक हिन्दी

शासकीय स्नातकोत्तर (स्वशासी) महाविद्यालय,
दतिया (म.प्र.)

आज के समय और समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास होने के कारण इनके संरक्षण का महत्व बढ़ा है। इसका कारण है व्यक्ति के सदाचरण में कमी का आना जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति का नैतिक पतन हुआ। समाज में मानसिक स्वास्थ्य के लिए कुछ नियम आवश्यक है। यदि हम कुछ नियमों का परिपालन नहीं करते तो आज जो स्थितियाँ हैं वह मनोविकृतियों का परिणाम है। वे घातक हैं क्योंकि व्यक्ति की सचेतनता में कमी आई है।

व्यक्ति मानसिक प्रवृत्ति नहीं बदलता जबकि परिवर्तन मानसिक, वैचारिक स्तर पर ही होना चाहिए। यदि हम धार्मिक होकर पूर्णतया भक्ति, श्रद्धा की बात करें तो प्रायः यह देखा जाता है कि जब व्यक्ति भक्ति में तल्लीन हो जाता है लेकिन उस तल्लीनता से निकलकर वह सिर्फ दूसरों को उपदेश देता है स्वयं अनुसरण नहीं कर पाता यानि अन्धानुकरण तो हो रहा है लेकिन सामाजिक चेतना जागृति के लिए सार्थक प्रयत्न नहीं हो रहे।

सबसे पहले विकास वैचारिक स्तर पर होना चाहिए। यदि हम अपनी चित्तवृत्तियों पर नियंत्रण नहीं रख पायेंगे तो समाज को स्वस्थ रूप से नहीं देख पायेंगे। आज मानव मन की विकृत भावना के कारण ही एक चार वर्ष की लड़की किसी के कुत्सित भाव का शिकार हो जाती है तो वयस्का तो होती ही है। इस विकार का परिष्कार दण्ड तो है ही नहीं। किसी भी तरह का दण्ड अपराधी की मनोवृत्ति को नहीं बदल सकता। यद्यपि मेरा यह मानना बिल्कुल नहीं है कि दण्ड दिया ही न जाये क्योंकि कहा गया है 'भय बिन होय न प्रीत' अतः भय आवश्यक है। मन की विकृति को ठीक करने के लिए आवश्यक है। मनश्चिकित्सा। वैज्ञानिक और आध्यात्मिक उपाय इसके लिए ज्यादा सार्थक होंगे। चिकित्सा विज्ञान ने बहुत उन्नति की है। अत्याधुनिक इलाज के तरीके भी खोज लिए गये हैं लेकिन मानसिक विकृति का कोई कारगर उपाय संभव नहीं हो पाया। आज प्रायः यह देखा गया है जानकारी के अभाव में मानसिक रूप से पीड़ित, अपनी कमियों का समाधान कर ही नहीं पाते। उन्हें या तो उपहास का पात्र बनना पड़ता है या अभाव ग्रस्त रहना पड़ता है।

इस संबंध में यह बात विचारणीय है कि क्या मानव, मानव समूह (समाज) का उत्तरदायित्व कुछ नहीं रह जाता है। हम अखबारों में, समस्यायें से उत्पीड़न की खबरें पाते हैं। संक्षिप्त, धीमी चर्चा के बाद विराम हो जाता है। इतिहास से हमें यह जानकारी भी तो मिलती है कि किसी बड़ी बुराई को समाप्त करने के लिए बड़े समाधान, परिवर्तन की भी आवश्यकता होती है। क्या हम स्पन्दनहीन हो रहे हैं, जो घटनाएँ-दुर्घटनाएँ हमें झकझोर नहीं पाती। हमारा समाज जिसमें बड़े-बड़े समूह में भिन्न-भिन्न तरह के कार्य तो किये जाते हैं पर यह कभी नहीं हो पाता कि किसी बुराई को रोकने के लिए बड़े रूप में यह बीड़ा उठाया जाये कि हम पतन को रोक लेंगे। कोशिश तो करें।

वर्तमान समय में अनेक प्रकार की धार्मिक सभायें आयोजित करने का प्रचलन बढ़ा है। मीडिया भी इस संबंध में पीछे नहीं है। दूरदर्शन पर बड़े संतों द्वारा आध्यात्मिक संगतें होती हैं। दर्शन, धर्म, समाज, परिवार की चर्चायें की जाती हैं, परन्तु परिवार तो तब भी विखण्डित हो रहे हैं पूर्व का वह सद्भाव जो संयुक्त रूप में था वह अब एकल रूप में है और उसके परिणाम हमारे सामने हैं। जिजीविषा बढ़ी, इच्छायें, आवश्यकतायें बढ़ी। भौतिकता की होड़ बढ़ी इसके साथ-साथ बढ़ गई स्वार्थपरता, स्वयं का उत्थान और दूसरे का पतन। यह हमारे मानसिक स्तर के विकास को दर्शाता ही है आखिर क्यों यह संकुचन आया। हृदय से हम अनुदा क्यों हुये। हमें जो अपने प्रयासों से प्राप्त करना था। कर लिया भौतिकतावादी दौड़ में दौड़ लिया और बहुत कुछ अलभ्य भी प्राप्त कर लिया। प्रयास यह अवश्य रहता है कि दूसरे को वह प्राप्त न हो जाये। उन धार्मिक सभाओं, प्रवचनों का असर ऐलोपैथी दवा की

तरह होता है कि नियत समय के पश्चात असर समाप्त। विचार की बात है एक विचार वह जो वहाँ उत्पन्न हुआ। देने वाले ने दिया या लेने वाले ने ग्रहण किया। विसंगति दोनों में है देने वाला शायद स्वयं वैसा नहीं करता जैसा कहता है और लेने वाला तो स्वतंत्र है, बाध्य नहीं उसके लिए कोई परिसीमन नहीं। यह उचित भी है कि नियंत्रण, आत्मशोधन व्यक्ति को स्वयं ही करना होगा।

कहीं-कहीं पर यह भी देखा गया कि अपरिपक्व उम्र के किशोरावस्था के बच्चे उस कुकृत्य में शामिल हैं जिसके दुष्परिणाम से वे आगाह नहीं है क्या यह चिन्तनीय नहीं कि जो अभी युवा भी नहीं हो पाया, जिसका बोध का धरातल इस स्तर पर मजबूत नहीं हो पाया कि करणीय और अकरणीय क्या है। वह जघन्यता की ओर कदम रखने जा रहा है और हम सब सुधार का कोई कदम नहीं उठा पा रहे हैं। क्या हम सब मिलकर एक स्वस्थ मानसिकता का युवक बनाने की अपेक्षा ये लापरवाह है इस तरह से जैसे कि रघुवीर सहाय ने लिखा है-

जब एक महान संकट से गुजर रहे हों

पढ़े-लिखे जीवित लोग

एक अधमरी अपढ़ जाति के संकट को दिशा देते हुए।

जब आप समझ सकते हैं कि एक मरे हुए आदमी को मसखरी कितनी पसंद है।

तब मैं पूछूँगा नहीं कि सौ मोटी गर्दनें झुकी हैं।

बुद्धि के

श्रद्धा से

कि लज्जा से.....

यह विश्व एक रंगमंच है जिस पर हम सब अभिनय कर रहे हैं, जी रहे हैं सिर्फ अपने लिए स्वकेन्द्रित होकर जिसके दुष्परिणाम भी हमें ही भुगतने होते हैं। यह कहना बड़ा सुविधाजनक लग रहा है कि बच्चे उदण्ड है। युवा भटक रहा है पर दिग्दर्शन की बात कोई नहीं कर पा रहा। जैसे प्रयास अनेकों तरह के हों रहे हैं पर यथार्थ कुछ और ही है और हम एक्सट्रा मार्डन हैं लेकिन हमारा एक धरातल है अगर हम उसे छोड़ देंगे तो मानवीयता से अलग हट जायेंगे। आज यही हो रहा है लगता है कबीर ने बहुत सोचकर कहा होगा-

“साधो यह जग मुर्दों का गाँव।”

हम वर्तमान में जी रहे हैं, अतीत से विस्मृत होकर, भावी भविष्य से आँख बंद कर। यही है हमारी सचेतनता। मैथिलीशरण गुप्त के प्रेरित करने के बाद भी हम यह नहीं सोच पा रहे हैं कि-

नर हो न निराश करो मन को

कुछ काम करो, कुछ काम करो जग में

रह कर कुछ नाम करो।

या फिर कार्य करने से पहले इस तरह से विचार कर सकते हैं-

बड़ा या छोटा कुछ काम कीजै।

परन्तु पूर्वा पर पर सोच लीजै।

बिना बिचारे यदि काम होगा।

कभी न अच्छा परिणाम होगा।।

आज हमें भविष्य को स्वर्णिम बनाने के लिए चेत जाना चाहिए अन्यथा किप्लव कभी भी हो सकता है। यानि वर्तमान को सार्थक बनायें और अपने आज को जीत लें।

शैशवावस्था से किशोर होते युवा के लिए अत्यावश्यक और अनावश्यक क्या है? वह हमें समेट कर फेंकना होगा केवल अपेक्षा रखना ही काफी नहीं है। कर्तव्य पहले है हमने दिया क्या है या किया क्या है यह उद्वेलन हमारे अन्दर चलना चाहिए। वह हमारा नहीं, इससे हमें क्या लेना हमें क्या करना चंद छोटे-छोटे वाक्यों से हम निवृत्ति पा लेते हैं, क्या यह यथोचित है। यदि है तो हमारे जीवन की परिणति क्या होगी। सामूहिकता का बोध एक बड़े परिवर्तन और सुधार की ओर ले जा सकता है। लेकिन इसके लिए मानसिक परिवर्तन भी आवश्यक है। अत्याधुनिक हुये समाज में क्रांतिकारी परिणामों ने हमें विस्मय और हैरत में डाला है। हम उन्नत होकर अभूतपूर्व

उपलब्धियों को प्राप्त कर रहे हैं यहाँ तक कि कुछ संगठन बनाकर कुछ अभिनव भी प्राप्त कर रहे हैं। अतः अभिनव भी श्रेष्ठ है कि आखिर कुछ हद तक मानवीयता को सार्थक किया। यह मानवीयता तब अनुचित लगती है जब यह देखा जाता है कि मानवीयता का कर्तव्य करने में भी व्यक्ति भेदभाव कर रहा है। जब हम भला कर ही रहे हैं तो उसमें विभेद कैसा? कुछ लोग तो बाहर जाकर दया का दरिया बहाते हैं और उनके परिजन ही ठोकरें खाते रहते हैं यानि दया पाना भी मोहताज हो गया। व्यक्ति उत्कृष्ट कार्य करना चाहता है किन्तु अपने आस-पास को हेय मानकर त्याग कर। वे संस्कार जो नैतिकता को जन्माते हैं अलग ही हो गये।

हमारी अपनी संस्कृति विशिष्ट संस्कृति बन गई जिसकी चकाचौंध ने नज़रों को इतना धुंधला कर दिया कि हम अपनी वास्तविक संस्कृति को भूल गये तो नैतिकता भी धीरे-धीरे क्षरित होने लगी। आज श्रेष्ठ चयन में व्यक्ति इतना तेज दौड़ने लगा जैसे मैराथन दौड़ प्रतियोगिता में स्वर्णपदक का अवसर हो तो सबसे पहला नम्बर आ जाये। नैतिकता के संदर्भ में मेरे ध्यान में कहानी याद आई कि जो जिसमें तीन महिलायें अपने-अपने पुत्रों के गुणों का बखान करती हैं परन्तु वे अपनी माँ की तरफ ध्यान भी नहीं देते। चौथी महिला शांत रहती है कुछ भी नहीं कहती तभी उसका पुत्र उसके पास आकर उसके कार्य में सहयोग करता है। यह था आंतरिक यानि नैतिकता के बहाने से हम देखें तो गुणों के साथ आचरण, संस्कारों की सीख भी बहुत आवश्यक है क्योंकि आज परिवेश बहुत अधिक प्रभावित करता है। तीव्र, तीव्रतर गति से कार्य करने वाली मशीनों, तेज गति के वाहनों, कम समय में पकने वाले संरक्षित भोज्य पदार्थों ने हमारे जीवन को काफी हद तक प्रभावित किया है जिसके प्रयोग ने हमारे शारीरिक श्रमों में जंग लगाई है हमारे विचारों को भी प्रभावित किया है। नैतिकता भी तो मानस से उपतजी है यदि हम पूरी तरह आडम्बरवादी हो जायेंगे तो नैतिकता को बहुत दूर से केवल मानव का मुँह ताकना होगा कि कोई तो ऐसा हो जो उसे आत्मघात करे।